लोक साहित्य और तमिल लोक संस्कृति

– डॉ. साईनाथ नागनाथ गणशेटवार

लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। लोक साहित्य के विद्वानों का मत है कि जहाँ–जहाँ लोक है, वहाँ–वहाँ लोक साहित्य भी उपलब्ध होता है। 'साहित्य' शब्द के पूर्व 'लोक' उपसर्ग लगाने के बाद उसका अर्थ होता है 'लोक साहित्य'। 'लोक' का अर्थ सीधा–सीधा जनता से जुड़ता है। इसलिए लोक साहित्य शब्द सुनने से ऐसे साहित्य का बोध होता है, जिसकी रचना 'लोक' से हुई होती है। एक विशिष्ट व्यक्ति नहीं बल्कि, लोक–समूह द्वारा रचित सहित्य को 'लोक साहित्य' कहा जाता है। जिसमें उस समूह के हर्ष, विषाद, भय, प्रेम, शोक आदि भावनाएँ–संवेदनाएँ होती हैं। इसमें उनकी सामूहिक अलिखित, मौखिक अभिव्यक्ति गीत, कथा द्वारा की जाती है। आदिम जीवन का तो लोक साहित्य से घनिष्ठ संबंध है। यदि यह कहा जाए कि आदिम जीवन लोक साहित्य का संस्कार विधाता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कथित पूर्ण सभ्य, सुसंस्कृत जातियों के जीवन में संस्कारों को सम्पन्न करने में जो भूमिका वैदिक मंत्रों की होती है, आदिम जातियों में लोकगीतों की भी वही भूमिका होती है। वास्तव में लोक–जीवन के लिए लोकगीत, लोककथा ही बहुत बड़ा मंत्र है। जन्म से लेकर विवाह, मरण आदि प्रसंगों पर विधि नियमों के अनुसार लोकगीत गाने की परंपरा रही है। सिर्फ इतना ही नहीं संपूर्ण वर्ष के सभी ऋतुओं में जीवन के विविध क्रिया–कलापों के अवसर पर लोकगीतों के गाने की परंपरा है। इसी प्रकार बाल्यकाल से ही दादा–दादी, नाना–नानी की कहानियों से लेकर व्रतों, त्यौहारों, पर्वों, उत्सवों, मेलों, तीर्थों, धार्मिक, सामाजिक क्रिया–कलापों के अवसर पर लोकगीतों को गाया जाता है। तात्पर्य यह है कि लोक–जीवन का प्रत्येक क्षण लोक साहित्य से किसी न किसी प्रकार संबद्ध रहता है। जिस प्रकार मनुष्य का जीवन बहुआयामी है, उसी प्रकार लोक साहित्य का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। इसमें लोकगीत, लोककथाएं, लोकगाथाएं, कथागीत, धर्मगाथाएं, लोकनाट्य, नौटंकी, आदि लोक साहित्य से संबद्ध विषय हैं। लोक साहित्य

अलिखित एवं लिखित दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। वैसे तो लोक साहित्य सामान्यतः अधिकांश मौखिक ही रहा है। वह मौखिक परंपरा द्वारा ही अनवरत चलता रहता है। परंतु अब शिक्षा एवं मुद्रण सुविधाओं के प्रचार–प्रसार के कारण लोक साहित्य के रूपों में बहुत कुछ बदलाव आया है। आज का लोक कवि जो भी नये साहित्य की रचना करता है, वह सब लिखित, लिपिबद्ध या प्रकाशित रहता है। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य के संकलन एवं संग्रह तथा शोध में प्रगति होने के फलस्वरूप बहुत–सा लोक साहित्य लिपिबद्ध किया जा रहा है, तथा उसको ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया जाने लगा है। इस संबंध में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का निम्नांकित कथन उद्धृत करना उपयुक्त होगा – "लोक साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हंसती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोडश संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है, प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाए जाते हैं। विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है, उसका प्रभाव जनसाधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः बाह्य जगत में इस परिवर्तन को देखकर हृदय में जो उल्लास या आनन्द की अनुभूति होती है, वह लोक गीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बुआई, निराई, लुनाई आदि के समय भी गीत गाए जाते हैं। जनता अपने पूर्व पुरुषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा–गाकर आनन्द प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोताओं के हृदय में वीर रस का संचार करती है। ये गीत लोक–गाथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं।"[1]

'लोक साहित्य' लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। लोक संस्कृति से आशय किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के पारंपारिक रिति–रिवाजों, त्यौहारों मान्यताओं और काल आदि से है। यह किसी क्षेत्र को स्वतंत्र पहचान प्रदान करती है। भारत की लोक संस्कृति में विभिन्न प्रकार के व्रत, त्यौहार, पर्व, मेलों का महत्व है। जितने पर्व व त्यौहार भारत में मनाए जाते हैं उतने शायद किसी अन्य देश में नहीं मनाए जाते होगें।

जहाँ तक लोक संस्कृति और लोक साहित्य का संबंध है, लोक साहित्य का कुछ अंश ही उसके क्षेत्र में आता है। ऐसा साहित्य भी है जो उसके बाहर भी है। लोक संस्कृति में केवल वहीं लोक साहित्य समाविष्ट होता है जो लोक की आदिम परंपरा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है। अत: इस लोक संस्कृति का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होगी। जितना कि उनमें सुरक्षित उन पंरपराओं का है, जो भू–विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। लोक संस्कृति से आशय किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के पारंपारिक रिति–रिवाजों, मान्यताओं और काल आदि से है। यह किसी क्षेत्र की स्वतंत्र पहचान प्रदान करती है।

भारत जैसे विविध सांस्कृतिक रूपों से भरपूर देश में अनेक बोलियों के चलते उसके लोक साहित्यिक रूप भी अलग–अलग हैं। इनके रचना–संसार में प्रकृति, परिवेश, समरसता और समन्वय की छवियाँ और छटाएँ भी अलग–अलग नजर आती हैं। किसी भी समाज की जातीय मनीषा, सामुदायिक चेतना, जातीय बोध, मानवीय मूल्यों और जीवन–दर्शन के विविध पक्षों को जानना हो तो उसके लोकसाहित्य, लोक परंपरा, सांस्कृतिक पहलू की जानना जरूरी हैं। जीवन–दर्शन और अध्यात्म से लेकर मनुष्य के तमाम राग–विराग हमारे इस लोक साहित्य परंपरा में मौजूद है।

भारत में अनेक राज्य हैं, उसमें विविध राज्यों की विविध संस्कृति, रीति–रिवाज परंपरा प्रसिद्ध है। इन विविध राज्य में दक्षिण भारत के तमिलनाडू सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत संपन्न प्रदेश है। इसके निवासियों की अकृत्रिम जीवन प्रणाली को सदियों से विभिन्न रूप में देखा जा सकता है। इस प्रदेश में आचार–विचार, लोक व्यवहार, धार्मिक विश्वास, रीति–रिवाज, पर्व और उत्सव, लोक नृत्य एवं लोक संगीत, मिथक और पौराणिक आदि की विशद रूप दिखाई देती है। इसके साथ ही यहाँ की जीवन शैली तमिल संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है। घने जंगल, समुद्री तट और इसे जोड़ने के लिए नीलगिरी, कोडाइकनाल के हिल स्टेशन के दर्शनीय स्थल

हैं। त्रिची, तंजौर, चिदंबरम् जैसे प्रसिद्ध शहरों को इसके मंदिर के खजाने के लिए कहा जाता है, जिसमें आध्यात्मिक उत्साह और कला और वास्तुकला के सुंदर कार्यों का चित्रण किया गया है। तमिल मूर्तिकला मंदिरों में सुरुचिपूर्ण पत्थर की मूर्तियों से लेकर उत्तम विवरण के साथ कांस्य के प्रतीक तक है। मामल्लपुरम में गुफा मूर्तियाँ शानदार कलात्मकता और रचनात्मक कौशल का उत्तम उदाहरण हैं। जब तमिल नाडु के मंदिरों की बात आती है तो कहा जाता है कि यहाँ के मंदिरों के दर्शन के लिए एक जन्म काफी नहीं है।

प्राचीन काल से ही तमिल लोग अपने व्यक्तित्व, इतिहास, भाषा, संस्कार, संस्कृति के प्रति पूर्ण रूप से प्रेम दिखाते हैं। वर्तमान युग में तमिलनाडु के भद्रसमाज और विद्वज्जनों के आचार–विचार, लोक व्यवहार और संस्कृति पश्चिम की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित हुए है, फिर भी आज यह तमिल लोग जो प्राचीन काल से बीते हुए परम्पराओं का स्वर्णयुग और अतीत की गौरवान्वित विरासत की ओर ही मुड़ते हुए दिखाई देते हैं। जब इनके ग्रामीण जनों के दैनिक व्यवहार में तो उस चिर प्रतिष्ठित युग के बहुत से रिति और व्रत, परंपराएँ, खानपान, तौर तरिके, विचारधाराएँ तथा जीवनमुल्य आज भी जैसे के वैसा पूर्ण रूप से सुरक्षित पाया जाते हैं। यह तमिल लोगों की संस्कृति का सबसे बड़ा मूल्य माना जा सकता है।

प्रदेश और लोग आलेख में 'तमिलनाडु' का भारत के अन्य राज्य से तुलना करते हुए अनुवादक लक्ष्मण चेटियार कहते है कि – "भारत के अन्य भागों के साथ तुलना करके देखा जाय तो तमिलनाडु को भाग्य के उलटफेर कुछ कम ही देखने पड़े हैं। पश्चिमोत्तर सीमा से शताब्दियों तक होने वाले विदेशी आक्रमणों के दुष्प्रभावों से यह प्रदेश प्राय: अछूता ही रहा। इसीलिए इसके इतिहास में, विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में, राजनीतिक स्थैर्य और आर्थिक सुव्यवस्था के लंबे कालखंड पाये जाते हैं। जिनके कारण उस गौरवमय अतीत से लगाकर आज तक परंपराओं की अविच्छिन्नता संभव हो चुकी है। सुबह–शाम भगवान की प्रार्थना, सादा भोजन और सादे वस्त्र से अधिक की आकांक्षा न करने वाली एक अकृत्रिम जीवन प्रणाली युगों से

लगाकर आज तक प्राय: अपरिवर्तित ही रही है।"[2] उपरोक्त कथन देखने से लगता है कि भारत में तमिलनाडु की सबसे एक अलग रितिरीवाज–परंपरा पद्धति का विशेषता रही है। जब तमिलनाडु के नगरों और कस्बों की नगर–रचना में मकानों, विथियों और सार्वजनीन केद्रों का स्थान, रचनाविन्यास एवं खाका–ढांचा को देखा जाता है तो सब जगह एक सा पाया जाता है। हर कस्बे की रचना केंद्रस्थित किसी देवालय के इर्द–गिर्द पास होती है। पहले प्राचीन काल में मंदिर के पुजारी–पुरोहित, मंदिर के सबसे समीपवर्ती कह जाने वाले स्थान पर रहते थे। उसके आस–पास अन्य व्यवसायी वर्गों के मकान रहते थे। इसके भी बाहर वाले दायरे में व्यापारियों और छोटे–मोटे काम धंदे और मेहनत मजदुरी करने वालों का निवास स्थान होते थे। इसके साथ अछूतों की बस्तियाँ नगर या गांव के बाहर होती थी। लेकिन आजकल वर्तमान में तमिल समाज स्वभावत: बहुरंगी और समिश्रित हो गया है। आधुनिक युग के आर्थिक और राजनितिक कारणों से प्राचीन व्यवस्था मिटने के कगार पर है। क्योंकि अब गावों की नक्शा बदलकर शहरों में परिवर्तन हो रहा है। अब प्राचीन काल में जो बंधन थे वह आज धीरे–धीरे शीतल होते जा रही है। सभी लोग सहजीवन की शैली प्रचलित करके अपना जीवन को गुजार रहे हैं।

भारत के सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास की कोई तमिलनाडु को अलग रखकर देखा नहीं जा सकता। क्योंकि भारत में तमिलनाडु एक ऐसा राज्य है कि वह अपनी संस्कृति, स्थापत्य और शिल्प कलाओं के लिए विश्वप्रसिद्ध है। तमिलनाडु की संस्कृति में चोल वंश, पांड्य वंश, होयसाला राजवंश और सातवाहन राजवंश जैसे शासकों की विरासत द्वारा लाई गई दक्षिण भारत की समृद्ध विरासत शामिल है। तमिलनाडु के विभिन्न राजवंशों ने मंदिर निर्माण और प्रतिमापूजन के क्षेत्र में गहरी रूचि प्रदशित की थी। यहां तक कि तमिल प्रदेश के लिए बेगाने होने वाले पल्लव नरेश भी तमिलनाडु के मंदिरों के स्थापत्य से और उनकी उपासना–पद्धतियों से बहुत प्रभावित हुए थे और उनकी अभिवृद्धि में इन राजाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने कई नये देवालयों का निर्माण करवाया और पुराणों का जीर्णोद्धार करवाकर उनका

विस्तार किया गया है। उनके बाद में होनेवाले चोलवंश के राजा तो तमिलनाडु की संस्कृति पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं।

तमिलनाडु के सबसे लोकप्रिय देवता विनायक, कार्तिकेय मुरगन, शिव, विष्णु और उनकी देवियाँ हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय देवता है मुरुगन, उन्हें तमिलों के संरक्षक देवता के रूप में जाना जाता है और उन्हें 'तमिल कदवुल' (तमिल भगवान) भी कहा जाता है। तमिल परंपरा में मुरुगन सबसे छोटे पुत्र हैं, और गणेश, पिल्लार शिव, शिव के सबसे बड़े पुत्र हैं। पहाड़ों के आराध्य देवता मुरगन सुब्रह्मण्य(कार्तिकेय) थे। कार्तिकेय के साथ–साथ गणेश भी लोकप्रिय हैं। तमिलनाडु के गांव–गांव में किसी भी पेड़ की छाया में या नदी तालाब के किनारे छोटा–मोटा गणेश मंदिर और मुरगन का मुर्ति अवश्य पाया जाते हैं।

मातृशक्ति की देवी के रूप में उपासना करना तो द्रविड संस्कृति का व्यवच्छेदक लक्षण रहा है। मातृशक्ति की पूजा अकसर महिषासुर मर्दिनी दुर्गा के रूप में की जाती हैं। देवी के कई अन्य रूप भी प्रचलित हैं। अक्सर तमिलनाडु में गावों की सुरक्षा करनेवाली शक्ति के रूप में किसी न किसी देवी की ही कल्पना की जाती है। तमिलनाडु के कई विश्व प्रसिद्ध देवालय और देवियों के ही मंदिर मिलते हैं। इनमें मुख्य मायलापुर की कर्पगंबाल, कांचीपुरम की कामाक्षी, चिंदबरम् की शिवकामी, तिरकदवुर की अभिरामी, तिरूविदैमरूधर की मुकंबिकै, मदुरै की मीनाक्षी और तिरूनेलवेली की कांतिमति देवि आदि हैं।

तमिलनाडु में भक्ति श्रध्दालु लोग विविध देवी–देवताओं के भक्ति में लीन होकर अनेक प्रकार की पद्धतियों से पूजा करते हैं। उन विविध प्रकारों में से एक है रथ खींचना इसका दूसरा नाम है रथोत्सव। एक छोटे से रथ को रस्सियों से बांधकर उसके हुक भक्त की पीठ में गड़ा दिये जाते है। भक्त इनकी सहायता से रथ को खींचता हुआ झूलसा देने वाली धूप में अपनी पीड़ा से बेखबर होकर मीलों का चक्कर लगता है और पूरा समय इष्ट देवता का नाम जपता रहता है। कभी–कभी वह जीभ खींचकर काफी बाहर निकाल लेता है और उसे उसी स्थिति में रखने के

लिए उसमें चांदी की किले गाड़ लेता है। यह चांदी की शलाका भगवान 'मुरगन' के प्रिय शस्त्र भाले का प्रतिक मानी जाती है। इसी प्रकार भक्त रथ यात्रा होने के बाद अनुष्ठान की पूर्णाहुति के रूप में जलते हुए लाल–लाल अंगारों पर चलते हुए अपने मुरगन को प्राथना करते है। यह भक्त इस लाल–लाल गरम अंगारों को मुरगन के फुलों की सेज समझकर उन पर से चलता चला जाता है। इसके बाद रथ में रखे हुए दूध फल–फूल चंदन, पवित्र भस्म आदि को देवता को चढ़ाया जाता हैं। भक्तिविभोर भाव से हाथ जोड़कर वह मुरगन के सामने खड़ा रहते हुए प्राथना करता है, और इस समय उसकी मनस्थिति साधना और संतोष के किसी अलौकिक सोपान पर होती है जहां शारीरीक कष्ट उसे स्पर्श ही नहीं कर सकते और जहां दिव्यता के मूलस्त्रोत से उसका साक्षात्कार होता है।

तमिलनाडु मंदिरों का राज्य है। यहां तक कि प्रादेशिक सरकार की राज्यमुद्रा पर भी मंदिर का गोपुरम् अंकित है। भारत के धर्म निरपेक्ष संघराज्य में तमिलनाडु ही एक ऐसा प्रदेश है जिसकी राज्यमुद्रा पर मंदिर का गोपुरम् अंकित हो। मंदिरों और उत्सवों का अत्यंत घनिष्ट संबन्ध का साथ है। बिना उत्सवों के मंदिर की और बिना मंदिर के उत्सवों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मंदिरों के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए ये उत्सव केवल धार्मिक समारोह ही नहीं होते, बल्कि उनका सांस्कृतिक और तिजारती महत्व भी होता है। वे लोगों के जीवन के अभिन्न अंग बन गये है।

देवी–देवता के बाद तमिलनाडु में त्यौहार की बात कि तो पोंगल तमिल लोगो का सबसे महत्वपुर्ण त्यौहार और उत्सव के रूप में प्रसिद्ध हैं। यह जनवरी महिने मनाते हैं लेकिन पूरा जनवरी और फरवरी तक चलता है। इस त्यौहार खरीफ की फसल सफल होने पर होती है। पोंगल के दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करके छह महीने तक लगातर उत्तर की ओर झुकता है। इसी को पोंगल, मकर संस्क्राति या उत्तरायण भी कहते हैं। पोंगल के दिन सब लोग नयी फसल के चावल को समारोहपूर्वक पकाकार बड़े आनंद के साथ खाते हैं। दुसरे दिन किसान लोग बैलों

और गायों का उपकार मानने का त्यौहार मनाया जाता है। इसके साथ–साथ पोंगल को मनाने वनस्पति–सृष्टि के अधिष्ठाता भगवान सूर्य को नयी फसल में कटे हुए चावल का भात का भोग लगाते है। खेतों और बागों की गन्ना, लौकी, विविध फल आदि को सजाकर प्रकृति की देन का प्रदर्शन किया जाता है। मिट्टी के नये घड़े को चूना–हल्दी–कुंकम लगाकर उसमें दूध और चावल से भर देकर आग पर चढ़ा दिया जाता है। चूल्हा मकान के आंगन या बरामदे में या प्रवेश द्वार के सामने सड़क पर मनाया जाता है।

तमिलनाडु में रिश्ते–नातों को देखने से यह पता चलता है कि परिवार के रिश्तों में एक दुसरे को बहुत महत्व दिया जाता है। उनके स्रोत ही जनजीवन है। वे लोग अपनी बुनियादी अंशों में ढूंढते हैं। इनकी सबसे प्राथमिक इकाई है परिवार, जो माता–पिता और बच्चों से बना हुआ। तमिल लोग अपने परिवार को सामाजिक जीवन का केंद्र बिंदु मानते है।

इससे कुछ अधिक व्यापक इकाई परिवार जिसमें दो या तीन पीढ़ी तक के परंपरा एक ही घराने व्यक्तियों का समावेश होता है। दादी उनके विवाहित पुत्र और उनकी पत्नियां एवं बच्चे और कभी–कभी माता–पिता के न रहने के बाद भी कई भाई–भाई एक साथ सम्मिलित परिवार के रूप में रहते हैं। संयुक्त परिवारों में साधन–संपत्ति का सामूहिक उपयोग होता है। चौका–चूल्हा भी साझे का होता है और सारे सदस्य एक ही मकान में रहते हैं। इसके बाद सामाजिक दायरा विवाहजन्य है। पत्नी के संबंधियों के प्रति गहरा स्नेहभाव होता है। सास–ससुर के प्रति माता–पिता के जैसी पूज्य भावना व्यक्त की जाती है और पत्नी के मायके के लोगों का घर गृहस्थी में महत्वपूर्ण स्थान होता है। विवाहित लड़कियों के मन में मायके के प्रति बड़ी ममता होती है। पुरुषों को भी अपनी पत्नी के परिवार के प्रति लगाव होता है और बच्चे तो ननिहाल की अपना दूसरा घर ही मानते हैं। यहाँ पर हर जाति के रस्मोरिवाज और प्रथाएं नाते–रिश्ते के लोगों को एक साथ जोड़े रखती हैं। गोन और वंश का संबंध जन्म, किशोरावस्था और विवाह से लगाकर मृत्यु और वार्षिक श्राद्ध तक पहुंचता है और हर प्रसंग पर उसका उल्लेख होता है।

विवाह संबंध अकसर जाति के भीतर ही होते हैं। तमिल लोकाचार में माता या पत्नी के माध्यम से जुड़े हुए संबंधियों में बड़ा भाईचारा और लगाव एवम् एक दुसरे के प्रति गहरा विश्वास पाया जाता है।

रीति–रिवाज के संबंध में एक जगह लक्ष्मण चेट्टियार अपने आलेख 'तमिल रीति–रिवाज और परंपराएं' में लिखते है कि –"तमिल लोक देह पर होने वाले ग्रीष्मऋतु के दुष्परिणामों को टालने के लिए अधिकांश तमिलजन सप्ताह में दो बार शरीर पर तिल के तेल की मालिश करते है। पुरूषों के लिए विहित वार हैं बुध और शनि, और स्त्रियों के लिए मंगल और शुक्र। लोकाचार की दृष्टि से इस प्रकार स्त्री–पुरूषों के लिए दो–दो अलग–अलग दिन निर्धारित करने के पीछे कुछ हेतु था। तेल मालिश करके अभ्यंगस्नान करने का दिन संपूर्ण विश्रांति का समय माना जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार मालिश के समय कान और पेट पर तेल नहीं लगाना चाहिए जबकि आंखों और पाँव के तलवों पर अवश्य लगाना चाहिए। इससे संबधित एक लोक गीत भी है। – विट्टुक केट्टुतु कातु, विडमल केट्टुतु कान्न। तोट्टुक केट्टुतु वयिरू, तोडमल केट्टुतु कालु।"[3] इस लोकगीत का अर्थ यह होता है कि, कान को अकारण सींक से कुरेदते रहने पर श्रवण शक्ति क्षीण होती हो सकती है। ठूंसपेट खाने से हाजमा बिगड़ सकता है। जबकि आंखों में काजल और गालों में पर्याप्त मात्रा में हल्दी आदि सौदर्य–प्रसाधन लगाने से स्त्रियाँ अपने चेहरे की विकृतियों को सुधार कर अपने रूप को निकार सकती है।

विवाह संबंध साधारणतः जाति के अंतर्गत ही होते हैं और इस दायरे में लड़के–लड़कियों को अनिर्बंध आजादी रहती हो, यह बात नहीं। स्वातंत्र्य प्राणि के बाद देश में सामाजिक परिवर्तन की जो प्रवृत्ति दिखाई दी है उसके कारण आजकल कुछ अंतर्जातीय और इक्का–दुक्का अंतधर्मीय विवाह भी होने लगे है। इतना ही नहीं, विवाह के बाद पति और पत्नी, दोनों को अपने–अपने धर्म की प्रथाएं और अपने–अपने समाज रस्मोरिवाज का पालन करने की छूट रहती है। विवाह के समय भोजन दोनों पक्ष एक–दुसरे को विवाह की दावत में निमत्रित करते है और उस दावत

में लोगों को खाने के लिए क्या देते है उसके बारे में भारतीय साहित्य किताब में का एक लोक गीत –

"परूप्पुम अन्नमुम पायसमुम
पलवकै करिकालुम वन्तरूली
वेना मट्टुम वित वितमाहवे
तेन्कै पचड़ी खिचिड़ी टंकेर
परंगिकै कटुदन पलपल करिहल
मंगै उरगै मानामिकु सांबार
रसमुदन दिव्य पच्चनंगलुडने।"[4]

उपरोक्त गीत का अर्थ – दाल चावल और मीठा हलवा, नारियल की बरफी, कई प्रकार के व्यंजन के साथ–साथ स्वाधीष्ट सांबार, चटपटा आम का आचार, सुप्रसिद्ध रसम् और लोकप्रिय नमकीन सब तैयार है।

रीति–रिवाजों में तमिल लोक किसी का जब मृत्यु हो जाती है तो वे लोग सारे क्रिया कर्म रितिरिवाज से करते है। तमिल परंपरा के अनुसार अमुक व्यक्ति 'मर गया' यह शब्द कहना टाला जाता है। इसके बदले वह 'स्वर्गवासी हो गया' या 'भगवान को प्यारा हो गया' कहते है। मृत्यु के बारे यह अंधविश्वास है कि दिसंबर–जनवरी में एकादशी के दिन मृत्यु होना अत्यंत पुण्यशाली मानते है। किसी भी गांव या शहर के उत्सह के समय मृत्यु होना अशुभ माना जाता है। इस उत्सह के समय किसी का निधन हो गया तो किसी भी प्रकार शोकसुचक संगीत न बजाते हुए मृत व्यक्ति को चुपचाप स्मशान को ले जाते है। तमिल में और एक बड़ा अंध विश्वास है कि शनिवार को किसी की मृत्यु हो गई तो कहा जाता है कि वह मृत आत्मा अकेली नहीं जाती थोड़े दिन के बाद फिर से उसी घर में किसी न किसी का मृत्यु हो जाये गी यह मानते है। 'शनिप्मोनमे तानिय पोकटु'। इसलिए उस मृतक के साथ की मुर्गा या बकरी को स्मशान ले जाकर जला देते है।

दुःखांत पारिवारिक जनों के शोक में सगे–संबंधी, इष्ट मित्र और विरादरी के लोग बड़ी संख्या में सहभागी होते हैं। मृत व्यक्ति की उठावनी में जाना अनिवार्य सामाजिक कर्तव्य माना जाता है। शोकसंतप्त संबंधियों के यहां जाकर उनका सान्त्वन करने से चक जाने को घोर कर्तव्यच्युती और पातक की कोटि का सामाजिक अपराध माना जाता है। कई बार मृतक की विधवा अपने में उपयुक्त संदर्भ जोड़कर देर से आनेवाले शोकप्रदर्शकों पर ताना भी कर देती हैं।

तमिल लोग अपनी भाषा को अन्य भाषा के सबन्ध में ज्यादा प्रेम करते है और तमिलों ने अन्य जातियों की अपेक्षा सास्कृतिक कार्यों में लोकभाषा को पहले स्थान दिया। उन्हें अपनी इस उपलब्धि पर उचित गर्व है। पर उन्होंने उत्तर भारत की भाषाओं, लिपियों का निरादार नहीं किया। तंजावूर के शिवमंदिर में नटराज की मूर्ति के नीचे चार पंक्तियाँ देवनागरी अक्षरों में उत्कीर्ण हैं। इन्हें उन्होंने नहीं मिटाया, उन पर काला तारकोल नहीं पोता। मराठों के अधिपत्यकाल में रानी कामाक्षी ने, वे पंक्तियाँ उत्किर्ण करायी थीं। तमिलों का तमिल भाषा से गहरा लगाव है। जिसे अक्सर 'तमिलानुनाई', 'टी' के रूप में साहित्य में सम्मानित किया जाता है अमिल 'माँ'। यह ऐतिहासिक रूप से रहा है, और काफी हद तक अभी भी तमिल पहचान का केंद्र है। दक्षिण भारत की अन्य भाषाओं की तरह, यह उत्तरी भारत के इंडो–यूरोपीय भाषाओं से असंबंधित है। तमिल भाषा में प्रोटो–द्रविड़ियन की कई विशेषताएं हैं, हालांकि तमिलनाडु में आधुनिक रूप से बोली जाने वाली तमिल स्वतंत्र रूप से संस्कृत और अंग्रेजी से ऋणपत्र का उपयोग करती है और इसके विपरीत। साथ ही, भाषा में अंग्रेजी भाषा और हिंदी (संस्कृत की एक उत्पाद और देवनागरी लिपि में लिखी गई) के कई सामान्य अक्षर नहीं होते हैं। तमिल साहित्य काफी प्राचीनता है, और के रूप में मान्यता प्राप्त है। शास्त्रीय भाषा भारत सरकार द्वारा। शास्त्रीय तमिल साहित्य, जो गीत काव्य से लेकर कविताओं और नैतिक दर्शन पर काम करता है, समकालीन और बाद के साहित्य में उल्लेखनीय रूप से भिन्न है अन्य भारतीय भाषाएं, और दक्षिण–पूर्व एशिया में धर्मनिरपेक्ष साहित्य के सबसे पुराने शरीर का प्रतिनिधित्व करती हैं।

तमिल में साहित्य के साथ–साथ अनेक कलाओं का विकास और पंरपरा बहुत पुरानी और अविच्छिन्न रही है। क्योंकी प्राचीन काल में तमिलानाडु में व्यापार कलाओं के विकास का एक केन्द्र 'कावेरीपट्टिणम्' नाम का नगर था। इस नगर का वर्णन प्राचीन तमिल काव्य 'मणिमेखलइ' में दिखाई देता है। इससे संबन्धित 'मणिमेखलइ' काव्य में यह उल्लेख है कि मगध, अवन्ति और मराठा प्रदेशों से आकर कावेरीपट्टिणम में काम करनेवाले कारीगरों तथा ग्रीक मूर्तिकारों का उल्लेख है। इन्ही मूर्तिकारों और कलाकारों के वजह से तमिलनाडु की स्थापत्य शिल्प कलाओं का विकास हुआ। आज भी भारत के साथ–साथ पश्चिम राष्ट्रों में तमिल कलाओं का नाम प्रसिद्ध है।

तमिलनाडु में लोक कलाओं की बात आने से कांचीपुरम के रेशमी सारीया जो भारत में सबसे प्रसिद्ध है। कच्चे रेशम को कांतने से लगा कर तैयार माल को अंतिम रूप देने तक की पूरी प्रक्रिया हाथों से कि जाती हैं। इसके साथ–साथ तमिलनाडु में दस्तकरी के उद्योगों में खिलौने बनाना, पीतल या तांबे की चदर पर चांदी का मुलम्मा चढ़ाना, पत्तरों पर सुंदर मूर्तियों या फूलपत्तियों की नक्काशी करना जैसे तंजावर के मंदिरों में हुआ है। कलापूर्ण चटाइयां और मन को लुभाने वाले गलीचे बुनना इत्यादी मुख्य है।

कुंभकारी – कुम्हारगीरी तमिलनाडु की अत्यंत प्राचीन और लोकजीवन में प्रतिष्ठापित कला रही है। मनमदुरै के काली और लाल मिट्टि के घड़े एवं कारिगिरी के पालिश किये हुए मिट्टी के बर्तन अपनी सुंदरता, आकृति एवं रंग के लिए दुर–दुर तक मशुहर हैं। उनकी सुघडता की कई अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भी बहुत सराहना हुई है।

काष्ठ शिल्प – लकड़ी को कोरने की कला तमिलनाडु का एक अन्य सुविकसित हस्तोद्योग हैं। मंदिरों के सुविशाल दरवाजों पर अंकित बारीक और जटिल नक्काशियां इस फन के जानकार कारीगरों की योग्यता का प्रमाण पेश करती हैं। ये नक्काशियां अत्यंत बारीक और जटिल आकृतियों से युक्त होती हैं। परवर्ती युगों में इस कला के जानकारों को चेट्टी नाडु में बड़ा प्रोत्साहन मिला था क्योंकि वहां के धन्याड्य चेट्टियों की पूरी जाति में अपने निवासस्थानों को इस कला द्वारा सुशोभित करने का रिवाज–सा चल पड़ा था।

इस तरह तमिलनाडु में हाथो से बनायी कलाएँ अनेक है। वें एक से एक सुंदर प्रकार से प्रचलित भी हैं। जिनमें केले के पेड़ के गाभे पर की जाने वाली नक्काशी, शंखसीपियों एवं सींग का कास और फुलमालाएं एवं मंदिरो के उत्सवों के समय बनाये जाने वाले पंडालों और उनकी छाजनों की कलापूर्ण सजावट में बहुत प्रसिद्ध है। इसमें खासकर तंजावर के कारीगरों ने बहुत नाम कमाया है कहा जाता है।

कलाओं के साथ तमिल लोकसाहित्य भी बहुत प्रसिद्ध है। दूसरे भाषा साहित्य जैसे ही तमिल में भी लोकसाहित्य का लिपिबद्ध लेखन कला का विकास अत्यंत प्राचीन काल में ही हो चुका था। फिर भी तमिल साहित्य उसके लिखित साहित्य से कहीं पुराना है। उस अति प्राचीनकाल के आरंभिक ग्रंथों के विभिन्न पाठों में इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि बहुत लंबे युगों तक उन रचनाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी अधिक रूप से ही आगे बढ़ाया गया था। जैसे 'एट्टुथोगै', 'पतिनेन कीलकनक्कु' काव्यसंग्रह। इस काव्यसंग्रह किसी प्राचीन मौखिक परंपरा के अविस्मरणीय गीतों के वर्गीकृत एवं लिपिबद्ध परवर्ती संकलन मात्र है।

जब मौखिक परंपरा की बात आती है तो तमिल में आरंभिक वैतालिकों और भाट चारणों के कई प्रकार थे। पानर, कुठार, पोरुनार, विरलियार, पुलवर, और अकबुनर सब इसी परंपरा के बंदी जन थे। जीभ की सहायता से उच्चारित वाणी ही उनकी अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम थी। इन गीतो की रचना ही नहीं, उनके अभ्यास और संप्रेषण की प्रक्रिया भी पूर्णतः मौखिक ही थी। लेकिन बाद में धीरे धीरे उसे मौखिक से लिखित में परिवर्तन करके अनेक लोक गीतों को लोकसाहित्य में स्थान दिया। इसे त्यौहार, देवी–देवता, खेती में श्रम और विविध जगह उसका प्रवाभ दिखाई देता है। फसल की कटाई और धान की रोपाई के समय यहां तक कि जमीन जोतने औरबीज बोने के समय भी विभिन्न प्रकार के गीत अकेले या सामूहिक तौर पर गाये जाते हैं। जैसे – इलांगो अडिगल के 'चिलप्पदिकारम्' नामक संकलन में समुद्रतटीय गीत शिकारियों के गीत, एवं गांव की ग्वालिनों और पहाड़ी प्रदेशों की किरातबालाओं के गीतों का क्रमबद्ध संचयन को देखा जाता है। तमिलनाडु के राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम् भारती की रचनाओं पर लोकगीतों का प्रभाव स्पष्ट जाहिर होता है। उदाहरणार्थ भारती के 'स्वातंत्रप्पल्लु' में कृषक लोकगीतों के 'पल्लुप–पत्तु' नामक छंद को ही परिष्कृत साहित्यिक रूप दे दिया गया है। स्त्रियों के उद्धार संबंधी गीतों में उन्होंने कुम्मी छंद का प्रयोग किया है। पुडिय कोनंगी (नया विदूषक) नामक गीत में लोक साहित्य के विदूषकों द्वारा प्रयुक्त ठेके का प्रयोग हुआ है। 'फन्नन एन कदली' नामक रचना में समाविष्ट 'तंगमे–तंगम' और 'उलगतु नायक्ये एंगल मुतुमारि' नामक गीत भी स्पष्ट रूप से लोकगीतों पर आधारित हैं। लोकगीतों के इस व्यापक अंगीकार के सहारे ही भारती बढ़ी सरल सुबोध शैली का प्रयोग कर सके जिसके कारण जन मौखिक साहित्य – साधारण में उनके प्रभाव का दायरा बहुत व्यापक हो गया।

इस तरह हम कह सकते है कि तमिल संस्कृति काफी सामृद्ध है। प्राचीन काल से लेकर आज तक वे अपनी संस्कृति को बचाव करते हुए, वे समाज में अपनी आस्था–विश्वास, रीति–रिवाज, संस्कार–संस्कृति, साहित्य परंपरा, पर्व–उत्सव, लोक नृत्य–लोक संगीत और विविध

लोक कलाओं के साथ समेटा हुआ है। भारतीय संस्कृति में तमिल लोक संस्कृति के साथ तमिल लोगो का जीवन दर्शन भी प्रस्तुत होता है।

आधार ग्रंथ –

1. लोक साहित्य पूर्वोत्तर राज्य के विविध रूप – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय – पृ. सं. 12
2. तमिल साहित्य – प्रदेश और लोग – लक्ष्मण चेट्टियार – पृ. सं – 01
3. तमिल साहित्य – प्रदेश और लोग – लक्ष्मण चेट्टियार – पृ. सं – 28
4. भारतीय साहित्य की भूमिका – रामविलास शर्मा – पृ. सं – 121
5. लोक साहित्य एवं संस्कृति एक विमर्श – डॉ एस. प्रीति

———————————

डॉ. साईनाथ नागनाथ गणशेटवार, सहायक प्राध्यापक – हिन्दी विभाग, क्रिस्तु जयंती महाविद्यालय (स्वायत्त) बेंगलूरू, कर्नाटक – 560077

ganshetwar@kristujayanti.com